ORIGINAL RESEARCH PAPER

Hindi

KEY WORDS:

हरियाणा के साहित्य में जीवन मूल्य

सरोज रानी सहायक प्राध्यापिका सी.आर.एम.जाट महाविद्यालय हिसार

शोध–आलेख – सार

व्युत्पति

हरियाणा' वैदिक कालिन शब्द है, जिसकी व्युत्पति हरि अथवा हर और यान शब्दों के योग से हुई है। इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है– हरि या हर का यान (हरस्य यानं हरणाम्)। इस भूभाग विशेष में हरि (विष्णु) और हर (शिव) अपास्य होनें के कारण उनका भक्तियान यहां पर विचरता रहा होगा। सम्भवतः इसी कारण इस क्षेत्र का नाम हरियाना अथवा 'हरयाना' पड़ा जो कालान्तर में 'हरियाणा'' हो गया इस शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख वेद में हुआ है।

ऋजुमुक्षस्थानें रजंत हरियाणें। रथं युक्त असनाम सुषामणि यहां प्रयुक्त 'हरियाणें' शब्द के सब कष्टों को सहने वाला हरणशील शिव का यान आदि अनेक अर्थ हो सकते हैं। किन्तु सर्वाधिक उपयुक्त अर्थ शिव का यान नही प्रतीत होता है। इसमें इस प्रदेश के नाम का ही निर्देश है। स्पष्टतः हरियाणा से अभिप्राय उस भूमि से है, जिस पर रथ आदि यान सुगमता–सरलता से आ–जा सकते है। हरस्य याननि विमानानि गच्छन्ति यस्मिन प्रदेशे स हरियाणाः। सम्भवतया इस भूक्षेत्र की अधिकांश भूमि समतल और सपाट थी तथा इस पर यानों का आवागमन सरल था।

कुछ विद्वानों के अनुसार इस प्रदेश के नाम का भगवान विष्णु के अवतार योगेश्वर कृष्ण से भी गहरा संबंध है। बृज से द्वारका आते–जाते या महाभारत युद्ध में श्री कृष्ण (हरि) का यान (रथ) इस क्षेत्र में गुजरा विचरा था, जिससे इसका नाम 'हरियाण पथ' पड़ा जो बाद में हरियाणा रह गया।'' इस मत के समर्थन में अस्थल बाहर से प्राप्त शिलालेख का उल्लेख किया जाता है। जिसमें इस प्रदेश के लिए ''हरियानक यू: लिखा गया है।''

एक अन्य मतानुसार इस शब्द का संबंध हरितारण्यक से है। जिसका अर्थ है– हरित–अरण्य अर्थात हरा–भरा जंगल या प्रदेश। हिसार भिवानी और महेन्द्रगढ़ जिलों के कुछ क्षेत्रों को छोड़कर यह समूचा प्रदेश हरा–भरा है। बरसाती मौसम में तो इसकी हरियाली देखते ही बनती है। अजमेर नरेश अर्णोराज चौहान की एक प्रशास्ति में इस प्रदेश के लिये 'हरियाणक' संज्ञा का प्रयोग हुआ है। इस से उक्त मत की पुष्टि होती है।

अतः हरितारण्यक' का बिगड़ा हुआ रूप 'हरिताणक और हरिताणक का हरियाणक और फिर हरियाणा हो सकता है।

डॉ0 हरिराम गुप्ता ने इसकी व्युत्पति 'आर्यायन अथवा 'आर्याना' से मानी है। उनका अनुमान है कि आर्यों का मूल निवास होने के कारण प्रारम्भ में इसे 'आर्याना' कहा जाता होगा, परिवर्तित होकर (राजपूतों का निवास राजपुताना लोधियों का निवास लुधियाना भट्टियों का निवास भट्टियाना आदि कि तर्ज पर) यह हरियाणा बन गया एक अन्य विद्वान ने इस प्रदेश में प्राप्त होने वाले उत्तम कोटि के बैंलों को आधार मानकर ' उक्षणायं ' से हरियाणा की व्युत्पति स्वीकार की है। 'उक्षणायन' का अर्थ है– उक्षणयं अयनम् अर्थात् बैलों के लिए कल्याणकारी घर।

कुछ अन्य विद्वान आभीर (अहीर) जाति का निवास होने के कारण आभिरायण' से हरियाणा की व्युत्पत्ति मानते हैं। (आभिरायणा–अभिरायण–होकर उक्त तिथि को भारतवर्ष के मानचित्र पर संवैधानिक रूप से उभरा।

पूर्व काल में हरियाणा एक बहुत ही समृद्ध और विशाल प्रदेश था तथा इसमें पांच लाख गांव बसते थे ''हरियाणें च ग्रामाणां लक्ष पंचक सम्मितम्।''[1] (स्कन्दपुराण) इसमें हरियाणा प्रान्त के वर्तमान क्षेत्र के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के मेरठ और आगरा क्षेत्र, राजस्थान के अलवर, भरतपुर और श्रीगंगानगर जिले, पंजाब की फाजिल्का और खरड तहसीलों तथा हिमाचल प्रदेश का शिमला और सिरमौर का भूभाग भी सम्मिलित था। केन्द्रशासित चण्डीगढ और दिल्ली भी हरियाणा के ही अंग थे।'' इस विशाल हरियाणा का कुल क्षेत्र लगभग 40 हजार वर्ग किलोमीटर था, जिसमें भाषायी तथा सांस्कृतिक समरूपता आज भी विद्यमान है।

किन्तु वर्तमान हरियाणा एक छोटा–सा राज्य है। उत्तर में शिवालिक पर्वत की श्रृंखलाओं और हिमाचल प्रदेश के विशाल क्षेत्रों तथा दक्षिण में अरावली की पहाड़ियों और राजस्थान के थार मरस्थल से घिरे इस प्रान्त की पूर्वी सीमा यमुना नदी खींचती है, तो पश्चिम में यह राज्य पंजाब की फाजिल्का तहसील तक फैला हुआ है। इसमें बांगर, बांगड़, नर्दक, खादर, अहिरवाटी तथा मेवात के क्षेत्र में शामिल हैं।

प्रशासनिक दृष्टि से हरियाणा को दो डिविजनों (अम्बाला और हिसार) तथा बाईस जिलों में विभक्त किया गया है। 88292 वर्ग किलो मीटर क्षेत्र में फैले इस क्षेत्र की कुल जनसंख्या लगभग एक करोड़ उनतीस लाख (सन् की जनगणना के अनुसार, वास्तविक जनसंख्या) है। जिसका 79 प्रतिशत गांवों में और 21 प्रतिशत नगरों तथा कस्बों में निवास करता है।

हरियाणा का अधिकतर क्षेत्रफल समतल और उपजाऊ है। हिसार भिवानी तथा महेन्द्रगढ़ जिलों के शुष्क एवं रेतीले क्षेत्रों को नहरों और सिंचाई कुंओं के माध्यम से पैदावार के योग्य बनाया गया है।

सृजनात्मक साहित्यः– अर्थमूल्य एवं विभेद

अर्थः– काव्यशास्त्र में साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जाता है, ये है शास्त्र और काव्य ''वड् मयमुभयधा शास्त्रं काव्यं च।'' शास्त्र ज्ञान–प्रधान होता है। तथा इसमें निहित कलात्मकता स्थूल और बाह्य होती है। काव्य रसात्मक होता है, इसमें निहित बाध्या और आन्तरिक दोनों प्रकार की कलात्मक सूक्ष्मता और सौन्दर्य का रहना प्रायः अनिवार्य है। इसमें मानव जीवन के बाहया और आन्तरिक परिप्रेक्ष्य में स्वाभाविक सामंजस्य रहता है।

काव्य (साहित्य) के पुनः दो भाग किये गये है। समीक्षात्मक साहित्य और सृजनात्मक साहित्य। समीक्षात्मक साहित्य का संबंध सृजनात्मक साहित्य की तात्विक मीमांसा तथा मूल्यांकन से होता है। सृजनात्मक साहित्य लेखन की मौलिक और नवीन सृजना होती है,

सृजनात्मक शब्द 'सृजन' तथा आत्मक शब्दों के योग से निर्मित हुआ है। सृजन का कोषगत अर्थ है, सृष्टि या रचना और आत्मक का अर्थ है भय या युक्त। अतः सृजनात्मक साहित्य का अर्थ हुआ– वह साहित्य, जो लेखक की मौलिक रचना हो। दूसरे शब्दों में जिस साहित्य की सृष्टि साहित्यकार स्वयंभु बनकर स्वानुभूतियों के धरातल पर स्वयं करता है वह सृजनात्मक साहित्य होता है। शब्दाकार भी शिल्पी या सर्जक होता है, वह ब्रह्मा की भांति शब्दों के द्वारा नई रचना–सृष्टि उसमें भाव की प्राण प्रतिष्ठा करता है।

''अपारे काव्य–संसारे कविरेव प्रजापतिः। यथावै रोचते विश्वं तथंद परिवर्तते। इसी करण, उसके द्वारा रचित नवीन मौलिक उद्यभावनाओं और जीवन मूल्यों से युक्त साहित्य को सृजनात्मक साहित्य कहा जाता है।

वस्तुतः सृजनात्क साहित्य ललित साहित्य का समानार्थि है। रमणोयता, मनोहरता, आनन्द–भाव और रागात्मकता इसके अनिवार्य गुण है। जो इसे ज्ञान के साहित्य से अलग कर कलात्मक वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। इन्हीं गुणों के कारण इसमें रस निष्पति की क्षमता उप्तन्न होती है, जो आनन्द की विधायिका है तात्पर्य यह है कि सृजनात्मक साहित्य में मानव–मन की अंनत गहराइयों में विद्यमान भावों को आन्दोलित कर एक सहज आनन्द की अनुभूति जगाने की शक्ति विद्यमान रहती है। यह शक्ति हि व्यापक अर्थ में साहित्य से समूचे वाड़मय से विधायक साहित्य को अलगकर उसे अपने विशिष्ट परिवेश में प्रतिष्ठित करती है।

भाव, कल्पना, विचार और शिला सृजनात्मक साहित्य के विधायक तत्व है। साहित्यकार अपनी पसंद या प्रकृति के अनुसार इसमें से किसी एक के कम या अधिक महत्व दे सकता है। पर उत्कृष्ट साहित्य के लिये इन चारों तत्वों का समुचित सामंजस्य परमावश्यक है। भाव कल्पना तथा विचार का संबंध साहित्य के प्राण, मन और मस्तिष्क से संबंध साहित्य के प्राण, मन और मस्तिष्क से है तो शिल्प का शरीर या बाहया व्यक्तिव से।

मूल्यः– यहां मूल्य से अभिप्राय उस गुण या गुण–समूह से है। जिसे मानदण्ड बनाकर साहित्य की सिद्धी का निरधारण अथवा महत्व का निरूपण किया जाता है। इस दृष्टि से मूल्य का अर्थ और आधार अन्ततः प्रयोजन ही सिद्ध होता है। जीवन की तरह साहित्य भी मूल्य सापेक्ष होता है। निसर्गतः साहित्य सृजन की प्रेरणा साहित्यकार की वैयक्तिक अनुभूतियों के मूल में नीहित है तो भी वह अपने व्यापक ज्ञान अनुभव और अभिव्यक्ति कौशल से उसे सार्वजनिक, सार्वभौमिक तथा सर्वकालिक बना देता है। श्रेष्ठ साहित्य सर्जक के साथ–साथ देश और समाज की भी विशिष्ट उपलब्धि होती है।

इसी कारण साहित्यकार उच्चतम सम्मान और श्रेष्ठतम स्थान का अधिकारी माना जाता है। किन्तु साहित्य सर्जक को मिलने वाला यही सम्मान–साहित्य की चरम–परिणती या उपलब्धि है– रसात्मकता! अतः उसका एकमात्र मूल्य

हुआ–रागात्मक आस्वाद अर्थात आनन्द प्रदान करने की क्षमता।

सामाधिकरण का सामर्थ्य जीवन मूल्यों का चित्रणः युग बोधक कभ अभिव्यक्ति भविष्य की व्यंजना, शिल्प सौष्ठव जैसे गुण अथवा मूल्य आस्वाद्यत्व की क्षमता में ही समाहित हो जाते है। समाधिकरण से अभिप्राय, लेखकिय अनुभूति के सामान्यीकृत होकर सार्वजनिक होने से है। इस प्रक्रिया में सहृदय की रचना और रचना के उद्देश्य कथा और कथा के पात्रों से तादात्मय हो जाता है। तभी उसे आनन्द की अनुभूति होती है। अन्य सभी गुणों का सम्बन्ध लोकहित से है। जिसके कारण साहित्य कितने सह' के भाव को सार्थक करता है। आनन्द की व्यापक परिधी में हित की भावना भी अन्तर्भूत है। क्योंकि हित की परिणती आनन्द ही होगी है। निश्चय ही साहित्य में नैतिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक मूल्यों के महत्व से इंकार नहीं किया जा सकता, किन्तु ये मूल्य स्वतंत्र न होकर रस–सिद्धि के साधन मात्र है। अतः प्रांसगिक ही है।

नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का महत्व इसलिए है कि उनके द्वारा रसात्मक बोध में स्थिरता एवं स्थायीत्व आता है और कलात्मक मूल्य सही शब्दों में ''शिल्पगत मूल्य रस सिद्धी के माध्यम है स्वतन्त्र नहीं''।

साहित्यकार का दायित्व एक सामान्य व्यक्ति चिन्तक, वैज्ञानिक या समाज शास्त्री की अपेक्षा अधिक गम्भीर एवं महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि अन्य सभी का संबंध जीवन अथवा जगत सभ्यता अथवा संस्कृति के किसी अंग या क्षेत्र विशेष से है, जबकि साहित्यकार का दायित्व सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा, जड़ मूल्यों का शोधन और नये मूल्यों की सष्टी तथा जीवन की सम्पूर्णीयता की अविकल अभिव्यक्ति करना है। इसीलिए साहित्य में व्यक्त मूल्यों का स्वरूप व्यक्ति के माध्यम से अनुभूत सामाजिकता का ही स्वरूप है। यहीं नहीं साहित्य के मूल्य देशकाल परिस्थितियों तथा परिवेश से युक्त होकर भी सामाजिकता के विशद एवं व्यापक मानवीय आयामों से समपृक्त होने के कारण भिन्न देशकाल एवं संस्कृति के लोगों को भी प्रभावित करते है।''

निष्कर्ष

निष्कर्षतः एक समर्थ शब्दशिल्पी जो युगदृष्य होने के साथ–साथ भविष्यदृष्टा और क्रान्तदर्शी भी होता है, अपने साहित्य में युगबोध की अभिव्यक्ति के साथ अनजाने ही छड़ अथवा स्तरहीन लेखक का प्रेरक बन जाता है। अतः कुछ निश्चित साहित्यिक मूल्यों का होना आवश्यक है। जिनके निष्कर्ष पर कसकर खरे और खोटे साहित्य को अलगाया जा सकें।

अतः इन्हीं अर्थ मूल्यों और विभेदों के द्वारा सृजनात्मक साहित्य का निर्माण होता है।

शोध ग्रंथ

1. स्कन्दपुराण पृष्ठ – 109
2. इन्टरनेट– पृष्ठ–318
3. अरहिन्त हरियाणा का सामान्य ज्ञान पृष्ठ–136–144
4. इन्टरनेट– पृष्ठ–323
5. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य डॉ0 शंकरलाल यादव पृष्ठ–73,74
6. इन्टरनेट– पष्ठ 324
7. डॉ0 शंकर लाल यादव– पृष्ठ 75
8. इन्टरनेट पृष्ठ–330